# तेजाब, कुल्हाड़ी, लैंगिक-बराबरी की भाषा

**-विकास नारायण राय**

भारतीय समाज में व्याप्त स्त्री हिंसा की भयावहता को उस रोजमर्रा की अपमानजनक एवं संवेदनहीन भाषा में देखा जा सकता है जो महिलाओं की लैंगिक ग़ैरबराबरी को निरंतर व्यक्त करती रहती है। यह भाषा केवल शब्दों, संकेतों और हाव-भावों में ही व्यक्त हो, ऐसा भी नहीं है। आये दिन इस भाषा के भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक हिंसक रूप सामने आते रहते हैं। सभ्यता के पैमाने हमें यौनिक शालीनता की भाषा तो सिखाते हैं पर लैंगिक बराबरी की कदापि नहीं।

देश के प्रगतिशील शिक्षा संस्थानों में अग्रणी दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जे एन यू) का वातावरण आजकल ऐसे ही हिंसक भाषा-प्रयोग से कम्पायमान है। लैंगिक गैरबराबरी को साक्षात करते हुए, वहां के भाषा संकाय में चल रही कक्षा में एक छात्र ने सहपाठी छात्रा पर कुल्हाड़ी एवं छुरे से घातक हमला किया। हमलावर ने तुरंत स्वयं जहर खा कर अपनी जान दे दी। परिवार और परिवेश ने उसे लैंगिक ऐंठन से भरी जैसी अस्मिता और सोच दी, उसी ने उससे ऐसी निरंकुश भाषा भी बुलवाई। 5 दिन बाद उसी संकाय की एक अन्य छात्रा पर उसका मित्र इसलिए टूट पड़ा कि वह मना करने के बावजूद दूसरे पुरुषों से बात करती है।

जे एन यू जैसे सहनशील वातावरण में ये घटनाएं दुर्भाग्यपूर्ण ही कही जायेंगी। पर इसे महज सुरक्षा में चूक या विश्व-विद्यालय के सांस्कृतिक परिवेश में गिरावट जैसे मानदंडों पर कसना भी गलत होगा। सही जांच के लिये लैंगिक असमानता के आयामों को ध्यान में रखना होगा, जो अन्ततः एक निहायत ग़ैरबराबरी की लैंगिक-भाषा को समाज में न केवल उपजाते हैं वरन् तरह-तरह से उसके विस्फ़ोटों को भी सामने लाते रहते हैं।

भारतीय संविधान में दो दर्जन से अधिक स्वीकृत भाषाओं और भारतीय समाज में सैंकड़ों की संख्या में फल-फूल रही बोलियां होने के बावजूद स्त्री पुरुष के बीच एक बराबरी की भाषा नहीं बन सकी है। यह स्वाभाविक भी है। जब स्त्री पुरुष के बीच बराबरी ही नहीं है तो बराबरी की भाषा कहां से बने? इस भाषाई हिंसा का भौतिक स्वरूप प्रायः महिलाओं पर होने वाले तेजाबी हमलों के रूप में प्रकट होता रहता है। 'मर्द' यह ताब नहीं ले पाता कि स्त्री उसकी 'प्रेम हरकतों' को ठुकरा दे या उसके 'प्रेम प्रदर्शन' के प्रति उदासीनता दिखाये। मर्द की समझ में यह भी शामिल होता है कि प्रेम जताने का हक केवल पुरुष का है, स्त्री का नहीं। महिला तो केवल प्रेम किये जाने के लिये बनी है न कि प्रेम जताने या प्रेम में अपनी मर्जी चलाने के लिये। परिवारों में लड़के यही देखते हुए बड़े होते हैं। समाजों एवं समुदायों में इसी 'मर्दानगी' को मजबूत किया जाता है। लिहाजा, मर्द अगर ठान ले तो काबू में न आने वाली स्त्री पर तेजाब से या कुल्हाड़ी से आक्रमण करना उसके लिये स्वाभाविक प्रतिक्रिया बन जाती है।

लैंगिक ग़ैर बराबरी की घिनौनी हिंसक परिणतियां समाज में चलती जा रही ऐसी तमाम अभिव्यक्तियों का भी परिणाम हैं, जो प्रत्यक्ष एवं प्रच्छन्न विधियों से एक असमान दुनिया के सहज प्रसार में बनी रहती हैं। बोल-चाल के लोकप्रिय माध्यमों का बड़ा हाथ होता है भाषा को लोग़ों की जबान पर बैठाने में। इस लिहाज से मीडिया की भूमिका भी लैंगिक बराबरी को लेकर सजग नहीं है। यहां तक कि फ़िल्म, टी वी, समाचार पत्र जैसे लोकप्रिय माध्यम बार-बार गच्चा खाते देखे जा सकते हैं। कभी अनजाने में और यहां तक कि जान-बूझ कर भी।

तेजाब फ़ेकने वाले 'सूअर' को मीडिया में 'जिल्टेड लवर' के सम्बोधन से मानो उत्सर्ग का प्रतिरूप बना दिया जाता है। एक लड़की जो स्वेच्छा से प्रेमी के साथ अन्यत्र जाकर नया जीवन शुरू करती है उसे 'उठाई गयी' या 'भगाई गयी' कहा जाता है, मानो वह कोई वस्तु हो। खाप मनोवृत्ति से, विद्रोही लड़की की हत्या को बजाय वहशियाना कुकृत्य कहने के 'ऑनर किलिंग' जैसा अलंकृत सम्बोधन मिलता है। फ़िल्मी गानों एवं संवादों में यह प्रतिध्वनि आम चली आती है: 'तुम अगर मुझको न चाहो तो कोई बात नहीं, किसी ग़ैर को चाहोगी तो मुश्किल होगी'। लोग तालियां बजाते रहते हैं। यह मीठी धमकी 'मर्द' के डी एन ए का अंतरंग हिस्सा बना दी जाती है।

हिन्दी साहित्य में विशेषकर हास्य कवियों की लेखनी से निकलनेवाला रस, अधिकांशतः स्त्री-लिंग के उपहास से भरा होता है। इंटरनेट या मोबाइल पर चल रहे तमाम चुटकलों में भी स्त्री की कीमत पर हँसने का भाव हावी होता है। निजी बातचीत में अगर कोई गंभीर व्यक्ति भी वातावरण को हल्का-फुल्का करना चाहता है, तो प्रायःस्त्री का उपहास करने वाले प्रसंगों को ही माध्यम बनाता है। गालियों का सारा भंडार तो स्त्री लिंग को सम्बोधित है ही। ऐसा भी नहीं है कि लैंगिक दकियानूसी की यह परम्परा केवल अनपढों, असभ्यों परम्परावादियों, रूढिवादियों, प्रतिगामियों, धर्मांधों जैसों तक ही सीमित हो। अच्छे-अच्छों की भी सार्वजनिक रूप से ज़बान फ़िसलते देर नहीं लगती। 'टंच माल' (दिग्गी राजा), 'रोड रोलर' (जयराम रमेश) 'सबसे सुन्दर अटार्नी जनरल' (बराक ओबामा)ऐसे हालिया प्रमुख उदाहरण हैं। यानी प्रगतिशीलों एवं मुक्त नैतिकता के पैरोकारों के भीतर भी कहीं-न कहीं आसारामों, मोहन भागवतों, रामदेवों, जैसे अंश ही कार्यरत रहते हैं।

लैंगिक भाषा की सबसे प्रचलित बदमाशी उन प्रसंगों में मुखरित होती है जिनमें पीड़ित को ही दोषी के कठघरे में खड़ा कर दिया जाता है। लड़की के साथ छेड़-छाड़ हुई-उसने कपड़े ही ऐसे पहन रखे थे! बस में या पार्क में बलात्कार हुआ- गैरवक्त पुरुष मित्र के साथ 'उत्तेजक' हरकतें करेगी तो और क्या होगा! शादी का वादा करके यौन-सम्बन्ध बनाने की धोखाधड़ी हुई-अपनी मर्जी का करेगी तो भरेगी भी! सम्पत्ति में हिस्सा मांगने पर सारे कुनबे ने उससे किनारा कर लिया-पारम्परिक भावनात्मकता पर चोट करेगी तो परिवार क्यों अपनायेगा! जैसे एक जेबकतरे को सरे-बाजार कोई भी पीट सकता है, एक सेक्स-वर्कर पर कोई भी अपने को जबरदस्ती थोप सकता है! परिवार के भीतर पत्नी पर कभी-कभार हाथ उठा देना कोई खास बात नहीं, पति नहीं हाथ उठायेगा तो कौन उठायेगा!

यह निरंतर अनुकूलन स्वयं स्त्री पर भी भारी पड़ता है। ग़ैरबराबरी की भाषा का समीकरण उसके सिर पर भी सवारी करता ही है। सास-बहू के तमाम प्रसंग इसी अनुकूलन की उपज हैं। इसी अनुकूलन के चलते परिवारों में औरतें मर्दवादी सत्ता की एजेंट बना दी जाती हैं। यही अनुकूलन लड़की को चुप रह कर वह सब कुछ काफ़ी दूर तक सहने को मजबूर करता है जो यौनिक हिंसा के रूप में उसके साथ घटता रहता है। इस चुप्पी के लिए भी परिवारों में इस्तेमाल होने वाली लैंगिक भाषा ही उसे तैयार करती है। कदम-कदम पर उसे याद कराया जाता है कि परिवार की 'इज्जत' उसके कंधों पर (यानी यौन शुचिता में) है। अगर किसी ने जबरन भी यह शुचिता छीन ली तो जवाबदेही उसी की बनेगी।

मशहूर टेनिस खिलाड़ी सरीना विलियम्स को किसी भी तरह से नासमझ या कमज़ोर नहीं कहा जायेगा। इस वर्ष के विम्बलडन ग्रैंड स्लैम से ऐन पहले उन्होंने भी एक 16 वर्षीय अमेरिकी लड़की को लैंगिक कठघरे में खड़ा कर दिया। यह अश्वेत लड़की अपने दो मित्रों के साथ 'डेट' पर गयी थी और उसे उन दोनों ने नशीला पेय पिलाकर हवस का शिकार बना लिया। सरीना की टिप्पणी थी: जब तुम 16 वर्ष की हो तो मित्रों के साथ ग़ैरवक्त जाने का अन्जाम जानना जरूरी है। तुम्हारे माँ बाप ने क्या यही शिक्षा दी है। वह लड़की अपने दोस्तों के साथ सिर्फ़ अच्छा समय बिताने गयी थी; न कि बलात्कार करवाने, पर सरीना ने उसे ही दोषी के कटघरे में खड़ा कर दिया।

हमारे लैंगिक कानूनों की भाषा में तो कमाल का छल भरा होता है। ऊपरी तौर पर लगता है जैसे वे कानूनी प्रावधान स्त्रियों के सशक्तीकरण का राग अलाप रहे हैं। पर वास्तव में उस कानूनी भाषा में ऐसी पेचीदगियां होती हैं कि पीड़ित महिला को अपने दम वक्त पर राहत मिल ही नहीं सकती। मसलन, घरेलू हिंसा विरोधी कानून के अन्तर्गत पीड़ित स्त्री को उस आवास से नहीं निकाला जा सकता जहां उसके साथ हिंसा हो रही है। कानूनी भाषा की बदमाशी यह है कि पीड़ित के साथ-साथ दोषियों को भी उसी आवास में रहने दिया जाता है। दूसरे शब्दों में पीड़ित को रहना तो उनके रहमो-करम पर ही है। सभी जानते हैं कि 'कार्य स्थल पर यौन हिंसा' करने वाला स्त्री की लैंगिक दयनीयता का ही फायदा उठाता है। अगर कानून को लैंगिक बराबरी की भाषा बोलनी आती तो कानून बनता 'कार्यस्थल पर लैंगिक हिंसा' रोकने का। पर कानून को भी फिक्र है बस यौनिक शालीनता की।

रोज़ाना बेटियां 'स्वेच्छा' से पैतृक सम्पत्ति में अपना हक छोड़ती रहती हैं, और कानून के पास ऐसी भाषा नहीं है कि वह इसे रोक सके। मैं अपनी तमाम लिंग संवेदी कार्यशालाओं में महिलाओं से, जिनमें प्रथम श्रेणी की अधिकारी भी शामिल हैं, कभी सही उत्तर नहीं पाता कि वे पैतृक सम्पत्ति में हक क्यों नहीं मांगती। प्रायः जवाब आता है, 'हमें जरूरत नहीं है' या 'हमारे भाई बहुत अच्छे हैं'। काफी कुरेदने पर सही जवाब भी आता है, 'अगर हक मांगा तो भाई से नाता ही टूट जाएगा।'

क्या पुलिस, क्या अभियोजन, क्या न्यायालय, किसी भी अपराध-न्याय व्यवस्था की एजेंसी में कार्यरतों के पास लैंगिक बराबरी की भाषा होती ही नहीं है। न ही उनके प्रशिक्षण में उन्हें लैंगिक बराबरी की भाषा सिखाई जाती है और न उनके काम-काज में इस पर जोर है। वे रोज़ाना के निजी एवं सामाजिक जीवन में लैंगिक ग़ैरबराबरी की भाषा बोलने के आदी होते हैं। लिहाजा उनके पेशेवर जीवन में भी ऐसी ही भाषा का परिलक्षित होना स्वाभाविक है। उच्चतम न्यायालय की नीयत पर संदेह की तो कोई वजह नहीं हो सकती। पर जब वे पूरे अधिकार से पीड़ित स्त्री के पक्ष में बोलते हैं तो भी लैंगिक बराबरी की भाषा कहाँ बोल पाते हैं? इसी 5 अगस्त को उन्होंने एक सामूहिक बलात्कार के मायने में पीड़िताओं को उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त 2 लाख के हर्जाने को मखौल बताते हुए इसे 10 लाख कर दिया। ठीक किया, और आगे कहा : बलात्कार के शिकार का ट्रामा सारे जिंदगी चलता है। ... उसकी शालीनता और आत्मविश्वास की भरपाई कितने भी हर्जाने से नहीं हो सकती। दूसरे शब्दों में अत्यंत सहृदय उच्चतम न्यायालय भी एक शरीर विरुद्ध अपराध को 'इज्जत' एवं 'मर्यादा' के पैमानों पर तौलने से गुरेज नहीं कर सका।

सदियों में बनी लैंगिक भाषा को तोड़ना आसान नहीं है। मैंने सिर्फ एक बार अपने साथ यह प्रयोग किया और असफल रहा। सोचा कि जीवन में एक दिन, सारा दिन, पत्नी के साथ बराबरी की भाषा बोलूँगा। शाम तक जबड़े इस कदर दर्द करने लगे कि दोबारा इस प्रयोग की कभी हिम्मत नहीं पड़ी। एक ही कार्यस्थल पर काम करने वाले पति-पत्नी एक साथ घर लौटते हैं; पति आराम से सोफे पर पसर जाता है और बिना संकोच पत्नी से मुखातिब होता है : एक गिलास पानी पिलाना। ऐसे स्वर सैकड़ों नहीं हजारों तौर-तरीकों से रोजाना के पारिवारिक जीवन में गूँजते रहते हैं।

कह सकते हैं कि बराबरी की भाषा बराबरी के समाज में ही सम्भव है। पर परिवारों, स्कूलों, भाषा-संकायों, मीडिया, कानूनों में सायास लैंगिक बराबरी की भाषा पर काम करने से निश्चित ही लैंगिक बराबरी की दिशा में पहल होगी। ऐसे 'मर्द' तो सायास कम तैयार होंगे जो सरे-राह लड़की पर तेजाब फेंकते हों या सहपाठी पर कुल्हाड़ी चलाते हों। कम से कम झूठी दिलासा देने वाले छलभरे कानून तो हमें नहीं भरमायेंगे। हम उन तालिबानों से भिन्न दिखेंगे जो लड़कियों को स्कूली शिक्षा के कुप्रभाव से 'बचाने' के नाम पर उन्हें गोली मार देते हैं। 'राम आ खाना खा, राधा आ झाड़ू लगा' जैसे स्वर परिवारों में कुछ तो कम होंगे। लड़कियों पर लदा 'इज्जत' का बोझ कुछ तो हल्का होगा। बजाय उन्हें महिला थाना, महिला बैंक/पोस्ट ऑफिस, महिला स्कूल, महिला अस्पताल इत्यादि से संरक्षित करने के, समाज में उनसे बराबरी की भाषा बोलने वाले पुरुष मिलेंगे।

# मोदी के खिलाफ़ भाजपा में गुटबंदी जोरों पर

**-मनोज कुमार झा**

भारतीय जनता पार्टी में प्रधानमंत्री पद के लिये मोदी की उम्मीदवारी को लेकर अभी तक मतैक्य नहीं हो पाया है। यह अलग बात है कि संघ नेतृत्व नरेन्द्र मोदी को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित कर देने के लिये दबाव बना रहा है और भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह भी यह मानकर चल रहे हैं कि मोदी ही प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार घोषित किये जाएंगे, पर भाजपा में मोदी के विरोधियों की भी कोई कमी नहीं है।

बॉलीवुड अभिनेता और भाजपा नेता शत्रुहन सिन्हा खुलकर मोदी के विरोध में आ गए हैं। उनका कहना है कि लालकृष्ण आडवाणी प्रधानमंत्री पद के कहीं ज्यादा योग्य उम्मीदवार हैं, वहीं बिहार भाजपा के प्रवक्ता ने भी उन्ही के सुर में सुर मिलाया, जिस वजह से उन्हें निलंबित तक कर दिया गया।

भाजपा में कई ऐसे नेता हैं जो आडवाणी के समर्थक हैं और उन्हीं को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित करवाना चाहते हैं, पर अभी वे कुछ खुलकर बोल नहीं रहे। जसवंत सिंह पक्के आडवाणी समर्थक हैं। यशवंत सिन्हा भी आडवाणी के पक्ष में हैं। हालांकि, उन्होंने कहा था मोदी अगला प्रधानमंत्री बनेंगे, पर बाद में वे इस बयान से पलट गए। सुषमा स्वराज भी आडवाणी की समर्थक हैं। गोवा में मोदी को भाजपा चुनाव प्रचार समिति का प्रमुख चुने जाने पर उनका असंतोष स्पष्ट दिखाई पड़ा था।

भाजपा में मोदी-समर्थकों को यह यकीन नहीं है कि भाजपा गठबंधन इतनी सीटें ला सकेगा कि वह सरकार बनाने का दावा कर सके। यही कारण है कि भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह ने सीएनएन-आईबीएन से साफ़ कहा कि अभी यह निश्चित नहीं है कि चुनाव के बाद क्या तस्वीर उभरेगी।

संघ और मोदी के लाख प्रयासों के बावजूद देश में पहले की तरह हिंदू लहर चला पाना नामुमकिन है। अयोध्या के मुद्दे पर ध्रुवीकरण नहीं हो सकता। दूसरा कोई हिंदूवादी मुद्दा है भी नहीं। मोदी का गुजरात के विकास का मॉडल भी फेल हो गया। विकास के मामले में कई राज्य गुजरात को चुनौती दे रहे हैं। गुजरात में बाहर से चमक-दमक जितनी दिखाई पड़े, भीतर से तस्वीर कुछ

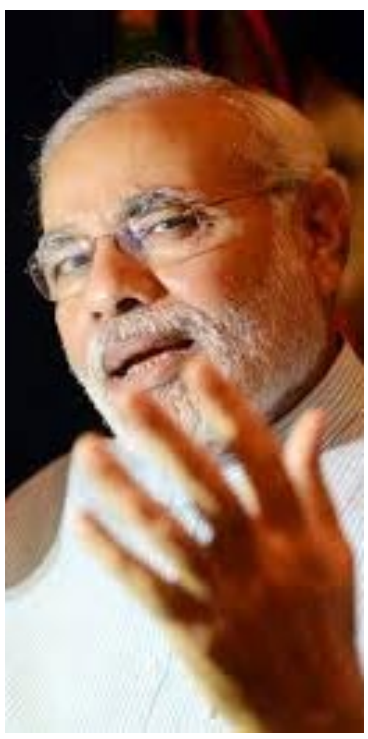

और ही दिखाई पड़ती है। वैसे तो ले-देकर सभी राज्य 'अविकास' अथवा 'अल्प विकास' की स्थिति में हैं। पूरे देश की अर्थव्यवस्था ही बदहाल है। राजनेता रोज ही ग़रीबी के नये-नये मानक निर्धारित कर रहे हैं। ऐसे में 'विकास' वोटरों के लिए लुभावना मुद्दा नहीं बन सकता।

सबसे बड़ी बात है कि भाजपा के गठबंधन से जद (यू) निकल चुका है। यह सबसे बड़ा गठबंधन साथी था। बिहार में नीतीश के प्रभाव को कम कर पाना भाजपा के लिए संभव नहीं होगा। नीतीश मोदी को मुद्दा बना अल्पसयंख्यक वोटों को और भी सघनता के साथ जोड़ेंगे। भाजपा के अलग होने से उनकी ताकत में कोई कमी नहीं आई है।

मीडिया का एक हिस्सा 'मोदी लहर' की बातें करने में लगा है। सोशल मीडिया पर भी मोदी के पक्ष में हवा बनाने की जोरदार कोशिश हो रही है, पर यह सिर्फ़ मध्यवर्ग तक सीमित है, जिसका अधिकांश हिस्सा वोट देने की जहमत नहीं उठाता। बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में आम वोटर मोदी के पक्ष में वोट देगा, यह संभव नहीं लगता।

कुल मिलाकर, परिस्थितियां ऐसी हैं कि न तो कांग्रेस गठबंधन और न ही भाजपा गठबंधन अगले साल लोकसभा में सरकार बना पाने लायक मत हासिल कर पाएंगे।

आडवाणी ने बहुत पहले ही यह आकलन पेश कर दिया था।

ऐसे में, एक राजनीति अनिश्चितता और अस्थिरता की स्थिति पैदा होगी। संवैधानिक संकट उत्पन्न हो सकता है।

तीसरे विकल्प की संभावना भी धूमिल-सी ही लगती है, क्योंकि इस दिशा में वामपंथी, मुलायम एवं अन्य क्षेत्रीय दलों के नेता कोई उत्साह नहीं दिखा रहे हैं। संभवतः ऐसे प्रयोगों की बार-बार असफलता से वे सशंकित हैं।

बहरहाल, अभी तक कोई स्पष्ट राजनीतिक ध्रुवीकरण का संकेत नहीं मिल पा रहा है।

ऊपर से देखने में भले ही लगता हो कि मोदी आत्मविश्वास से लबरेज हैं, पर आशंकाओं से वे भी घिरे हुए हैं। बाहर की तो छोड़ें, सबसे पहले तो उनका अपनी पार्टी से ही उनके विरोध में स्वर उभर रहे हैं। अंदर ही अंदर भाजपा में उनके ख़िलाफ़ जो गुटबंदी हो रही है, उससे उबर पाना उनके लिए एक बहुत बड़ी चुनौती होगी।

ऐसे भी, उनकी छवि कभी अखिल भारतीय नेता की नहीं रही है। ■